बल्लाभाऊ तथा दादा धर्माधिकारी

वैश्विक नागरिक – 'दादा'

दादा धर्माधिकारी की 125वीं जयंती के अवसर पर उनके पोते तथा मुंबई उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश सत्यरंजन धर्माधिकारी द्वारा लिखित यह लेख हमारे पाठकों लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

- संपादक

इस वर्ष १८ जून से अगले वर्ष १८ जून तक (२०२३-२०२४) दादा धर्माधिकारी की १२५वीं जयंती मनायी जायेगी। मेरे लिए वे केवल मेरे दादाजी नहीं बल्कि एक ऐसा व्यक्तित्व था जो गाँधी, विनोबा एवं सर्वोदय के विचार और तत्व को सरल, सहज तथा सीधे रूप में लोगों के सामने रख सकता था। चिंतक, विचारक और विवेचनकार तो दादा थे ही मगर उनकी विशेषता यह थी की वे महानुभावों और स्वतंत्रता सेनानियों के साथ या निकट होते हुए भी भक्त या अनुयायी की भूमिका में नहीं रहे। वह विचार और उसके अनुरूप व्यवहार के प्रशंसक थे। मगर विचार प्रवाही होना चाहिए यह उनका आग्रह था। वे कहते थे की बुद्ध, मार्क्स, गाँधी को कुछ बात ज्ञात होते ही उन्हें शब्द रूप मिला। इसका मतलब जो पेश किया गया उस पर उनकी मालिकी नहीं होती। विचार पर किसी का हक़ नहीं होता और न होना चाहिये ऐसा दादा का कटाक्ष था। मालकियत और हक़ जताने से विचार कुंठित हो जाते है। उस विचार के प्रचारक उसे और ज्यादा सीमित करते है। फिर वह मत बनता है। दादा कहते थे विचार का आग्रह मत में परिवर्तित होता है और जब मत संगठित होता है तो एक संप्रदाय बनता

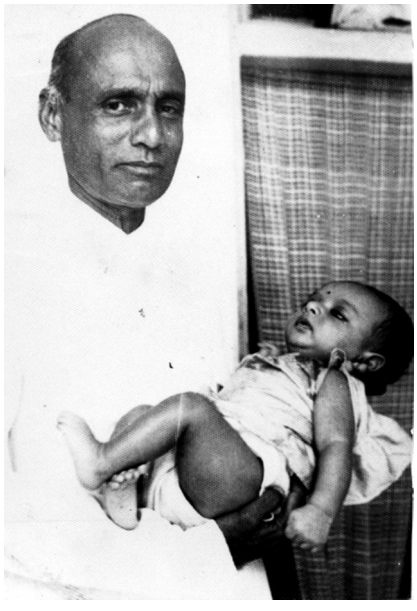

है। फिर संघर्ष होता है। विचार को प्रवाही रखोगे तो संघर्ष टलेगा और हिंसा भी नहीं होगी। अनुयायी और शिष्य अपने गुरु को उनकी क्षमतानुसार समझते और नापते है। आँखें अपनी मगर दृष्टि और नजर गुरु की नहीं इसी कारणवश गुरु का कद छोटा होता है। गुरु को पता होता है की विचार को मत बनाकर विवाद उत्पन्न किया जायेगा। इसलिए दादा को "गाँधीवाद" शब्द अच्छा नहीं लगता था। गाँधी विचार के भाष्यकार यह उनका वर्णन यथार्थ है। पढ़ाई, लिखाई, मनन व् चिंतन ये निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और यही वजह थी की दादा विचार का प्रवाह रोकने के खिलाफ थे। जब डॉ. अभय बंग और डॉ. उल्हास जाजू ये कहते है की "गाँधी हमने नहीं देखे मगर विनोबा और जयप्रकाश को हमने देखा है मगर यह तीनों को समझा इसका श्रेय पूज्य दादा का है।" तो यह वक्तव्य का अलग महत्व है। ऐसा कितने ही लोगों ने दादा के बारे में कहा और लिखा है। पूज्य दादा की यही विशेषता है जिसका आकलन मुझे आज होता है।

वे कहते थे मैं गुरु या मार्गदर्शक नहीं बन सकता क्योंकि फिर दूसरी व्यक्ति अनुयायी

और शिष्य होता है। वे कहते थे परंपरा से ज्यादा मुझे रिश्ते बनाना और बढ़ाना अच्छा लगता है। इसलिए उम्र तथा बाकी बंधन और मर्यादा, मैत्री, स्नेह और प्यार में रुकावट न बने और दादा बड़ी सहजता से रक्त संबंध से आगे रिश्ते बनाते जाते। उनका परिवार बहुत बड़ा और व्यापक था। इसी कारण हमारे घर में दादा का आगमन इसका अर्थ और नए सदस्यों का हमारे साथ जुड़ना। रिश्तेदारों के अलावा परिवार का ऐसा विस्तार आज कम देखने को मिलता है। मैत्री, स्नेह, प्रेम यह आध्यात्मिक मूल्य है ऐसा दादा मानते थे। उनके जीवन की बुनियाद विशुद्ध स्नेह और प्रेम था और उनका कहना था की इसमें सतत वृद्धि होती है। हमारे संविधान में एकता, एकात्मता, वह भी विविधता में, ऐसी संकल्पना है। शासन और नागरिक दोनों ही भेद-भाव न माने और जात, धर्म, भाषा, लिंग तथा जन्मस्थान की मर्यादा को तोड़कर पारस्परिकता बढ़ाये। दादा का जीवन इन्हीं सिद्धांत और तत्वों की प्रत्यक्ष मिसाल थी। मुझे आज भी "दादा का पोता" यही पहचान का सबसे ज्यादा अभिमान है। भारत के प्रायः सभी प्रदेशों और राज्यों में दादा का विस्तारित परिवार फैला हुआ है और हम सारे उसके सदस्य है। ऐसा रिश्ता और संबंध बेहद ही मधुर, मजबूत और टिकाऊ है। भिन्न विचारधारा और सोच रिश्तों में बाधा नहीं ला सके। प्रवाह खंडित नहीं हुआ और वैचारिक भिन्नता रिश्तों में दरार नहीं ला सकी।

दादा केवल धर्माधिकारियों के नहीं थे इसका अर्थ भी समझना जरूरी है। हम साथ साथ रहते हुए भी साथ जीते नहीं। मात्र जीवित रहना पर्याप्त नहीं। जिसे हम जीना समझते है उसका अर्थ सुख, दुःख इ. सभी उतार चढ़ाव में शामिल होने की वृत्ति कायम रखना। मैत्री, रिश्ता (करीब या दूर का), खून का ही नहीं, मगर सच्चा तथा आदरभाव युक्त हो। इसमें अंतर न आये ऐसा प्रयास निरंतर करें ऐसा दादा चाहते थे। दादा कहते थे राष्ट्र मनुष्यों की हर घड़ी साथ रहने का संकल्प है। देश भौगोलिक सीमा जानता है। स्वयं को देशप्रेमी कहने वाले प्रायः भूमि से लगाव रखते है। राष्ट्रीयता वैश्विक संकल्पना है। किसी समूह तथा प्रदेशों के प्रश्न तथा समस्या समूचे देश की होती है। हल या उत्तर की खोज व प्रयत्न पूरे राष्ट्र को करना चाहिए। "वसुधैव कुटुंबकम" इसका अर्थ कौटुंबिक भावना का विस्तार और उसकी व्याप्ति भौगोलिक सीमा को पार करना तथा सोच बदलने की क्षमता। इसे ही बढ़ावा दे अथवा व्यवहार में राष्ट्रीयता का दर्शन नहीं होगा। जब आसाम का प्रश्न जटिल हो गया तब आंदोलक युवकों से चर्चा व् संवाद करने दादा अपनी आयु व स्वास्थ्य की चिंता छोड़ मुंबई से गुवाहाटी गये। आज दादा होते तो कब के मणिपुर पहुँच जाते।

मगर मेरे दादाजी अंत तक एक सामान्य आदमी ही रहे। उनकी इच्छा थी की लोग उन्हें एक साधारण भारतीय नागरिक ही समझे। आग्रह था तो इतना ही की सोच अखिल भारतीय हो। जीवनभर अपने आप को किसी भी प्रदेश, धर्म, जाति या संप्रदाय का ठप्पा न लगे यही प्रयत्न किया। हम भारतीय एक बात को भलीभाँति समझे की व्यक्ति की पहचान पद, पैसा या सम्मानों से न हो। इंसानियत अपने आप में बड़ा गौरव है। भारतीयत्व और राष्ट्रीय व्यक्तित्व के लिए न पैसा, पद जरूरी है न आपकी पदवियां। जब हमारे संविधान ने अनुच्छेद १८ (अठारह) द्वारा सभी शीर्षकों और उपाधियों को समाप्त कर दिया है तब उसका पालन करना हमारा कर्तव्य है। हालाँकि यही प्रावधान पद्म पुरस्कारों इ. को अबाधित रखता है फिर भी दादा का मानना था की पुरस्कार प्राप्ति हेतु स्पर्धा और होड़ हानिकारक है। वह मेहनती, मगर गरीब भारतीय नागरिकों का अपमान है। क्या हमारी शिक्षा हमें यही सिखाती है यह उनका सवाल था। हम साक्षर है मगर शिक्षित नहीं यह उनका दुःख था। पढ़ाई पदवी से जुड़ी है और पदवी नौकरी से और नौकरी ऊँचे

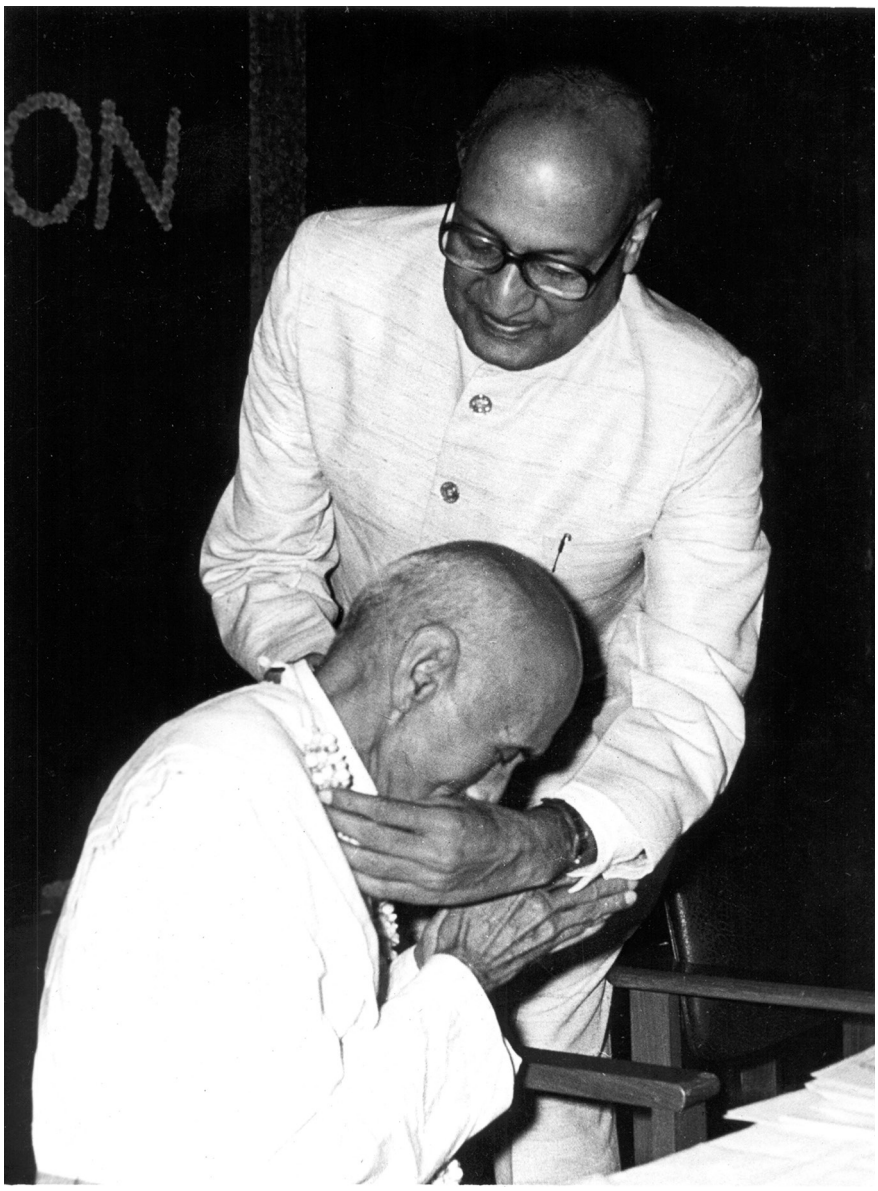

पद पाने के लिए ना के सेवा करने हेतु। आम जनता जीवन की मूलभूत जरूरतों से वंचित रहे इसके लिए स्वतंत्रता आंदोलन नहीं छेड़ा था। अंग्रेजों ने तो गुलाम पैदा करने के लिए शिक्षा पद्धति बनाई। भारतीय नागरिक अंग्रेजों द्वारा दी जानेवाली शिक्षा पाकर उन्हीं की सेवा करें यह प्रमुख उद्देश्य था। हम तो गुलामी से मुक्ति चाहते थे। हमारी जंग असमानता, अपमान, अन्याय और शोषण के खिलाफ थी। स्वराज और स्वतंत्रता दोनों ही हमें प्राप्त करने थे। इसलिए दादा ने अंग्रेजों द्वारा दी जानेवाली शिक्षा लेकर पदवी प्राप्त करना उचित नहीं समझा। पढ़ाई छोड़ वह आंदोलन में शामिल हुए और गाँधीजी के आवाहन पर सत्याग्रह और अहिंसात्मक प्रतिकार का मार्ग अपनाया। दादा कहते थे की पैसा और पद प्रतिष्ठा देने लगेंगे तो जो साक्षर नहीं वह यह दोनों आसानी से प्राप्त नहीं कर पायेगा। गरीब, शोषित, पीड़ित समाज सबसे ज्यादा शरीर-श्रम करता है मगर उसका मूल्य अगर शून्य के बराबर रहेगा तो स्वतंत्र होने के बावजूद असमानता और अन्याय जारी रहेगा।

दादा ने युवक युवतियों से ही सच्ची क्रांति की अपेक्षा की। उनका कहना था की तरुणाई अपने आप में गुण है। तारुण्य ताजगी और उत्साह, उमंग से भरी जीवनावस्था है। युवक युवतियों को बड़ों जैसा बनाने की कोशिश न करें। उन्हें अपना जीवन स्वयंशासित और विकसित करने का अवसर मिले यह युवकेतर समाज का कर्तव्य है। युवाशक्ति का मोल जानने वाला ही ऐसा विचार करता है। दादा कहते थे की शोषण मुक्त समाज युवक ही प्रस्थापित कर सकता है। वही भुखमरी और विषमता से व्यथित होगा और उसे मिटाने के लिए अपना जीवन अर्पण करेगा।

अंत में यही कहूंगा की दादा ने अपने बच्चे, पोते-पोतियों और उनके युवा दोस्तों पर हावी होने की या उन पर दबाव डालने की कोशिश कभी नहीं की। सभी तरह से मुक्त जीवन और चिंतन के लिए प्रोत्साहित किया। धर्म, जाति विशेष संस्कार और परंपराओं से दूर रखा। मौज मस्ती करने में बाधा नहीं बने दादा। वे तो हमारे एक साथ गाने बजाने, शोरगुल में भी शामिल होते थे। सुर, ताल, लय इन बातों पर ज्यादा ध्यान न देकर गीत संगीत को समझकर उसका आनंद लेने पर पूरा लक्ष दादा ने केंद्रित किया। गीतकार आनंद बक्षी जी का एक गीत दादा के समक्ष हम बिना हिचकिचाहट के गुनगुनाते थे। उसके शब्द दादा को बेहद प्रिय थे। उनका कहना था की गीत और कविता कई लेखों, भाषणों और ग्रंथों को अपने शब्द सामर्थ्य में सिमट लेते है।

"यहाँ वहाँ सारे जहाँ में तेरा राज है,

तेरे ही तो सर पे मोहब्बत का ताज है,

जवानी ओ दीवानी तू जिंदाबाद ...."

"जुदा सभी रस्मों से तेरा हर रिवाज़ है",

"तेरे जवाँ हाथो में दुनिया की लाज है",

और अंत में "तेरी नजर तो चाँद तारों पे आज है" ये संपुर्ण गीत हमसे गवाँकर दादा ने हमें अहम् पाठ पढ़ाया।

उन्हें शतशः प्रणाम।

- सत्यरंजन धर्माधिकारी

◆◆◆